



आधुनिकता के आर्डने में जाति परिदृश्य

के बदलते प्रतिमानों का अध्ययन

नितिन चंद्रा (शोधार्थी)

बुद्धिस्ट एवं सभ्यता संकाय

नानकचन्द्र (शोधार्थी)

मानविकी और सामाजिक विज्ञान संकाय

गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, उत्तरप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

जाति भारतीय समाज के विकास और समरसता में एक विकराल और गंभीर समस्या बनी हुई है। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान समाज में अभिशप्त जाति प्रथा, अस्पृश्यता, गरीबी और असमानता को समाप्त करने का वादा भी किया था लेकिन वर्तमान में भारतीय समाज इन मूलभूत समस्याओं से ग्रस्त है। प्रत्येक युग इतिहास का, उसकी परम्पराओं का, प्रयोगों का और प्रणालियों का पुनर्मूल्यांकन करता है और समसामयिक रोशनी में इतिहास के कुछ प्रश्न इतने वांछनीय नजर आते हैं जिन्हें आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समय की मांग के अनुसार समझा जा सकता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि जाति के प्रतिमानों में परिवर्तन अवश्य हुआ है, लेकिन 68 वर्षों के पश्चात् भी जाति समाप्त नहीं हुई है अपितु जाति का धुवीकरण जरूर हुआ है। इसीलिए इस शोध पत्र के माध्यम से यह प्रकाश डालने का प्रयास किया है कि वर्तमान में जाति की क्या प्रासंगिकता है और क्या जाति के स्वरूप में कोई परिवर्तन आया है या नहीं और वो कौन-सी चुनौतियां हैं जिसके कारण भारतीय समाज वर्तमान में जाति के जाल में उलझा हुआ है?

प्रस्तावना

इतिहास तथ्यों और साक्ष्यों का एक क्रमबद्ध अध्ययन है जिसे अतीत का दर्पण भी कहा गया है और दर्पण में वास्तविकता ही परिलक्षित होनी चाहिए। इतिहासकार समसामयिक रुचि और आवश्यकता के अनुसार अतीत की घटनाओं का निरूपण करता है। इतिहासकार का मुख्य उद्देश्य अतीत और वर्तमान के बीच ऐसे सेतु का निर्माण करना है जिसके माध्यम से समसामयिक समाज को अतीत का अवलोकन कर भविष्य का मार्गदर्शन कर सके। इतिहासकार इस सेतु पर घूमने वाला वह उल्कापिंड है जिसका विशेष रूप

से मुख्य उद्देश्य अतीत का अवलोकन कराना, वर्तमान को प्रकाशित करना और उज्ज्वल भविष्य के लिए दिशा-निर्देश करना है। मध्यकाल में सामंतवादी प्रथा प्रारम्भ हुई। इसके दूरगामी सामाजिक आर्थिक परिणाम हुए और इसके साथ साथ आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास भी हुआ। भारतीय राजनीति का भी सामंतीकरण हुआ। आज जाति प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक समुदाय में घर कर गई है जिसके कारण समाज में तनाव दिखाई देते हैं।

भारतीय समाज हजारों वर्षों से जातियों और उपजातियों के अनेक समुदायों में विभाजित है

जो विज्ञान, प्रौद्योगिकीकरण, भूमंडलीकरण और दूरसंचार के युग में भी अपने रहन-सहन, रीति रिवाज, आचार विचार, शिष्टाचार, नैतिक मूल्यों और व्यवहार में विभिन्नता बनाये हुए है। ई.एच.कार के शब्दों में “वस्तुतः इतिहास, इतिहासकार तथा तथ्यों के बीच अंतक्रिया की अविच्छिन्न प्रक्रिया तथा वर्तमान और अतीत के बीच अनवरत परिसंवाद है।” इतिहास उन तथ्यों और बिन्दुओं को भी उजागर करता है जिनके कारण भारत में जातिप्रथा का निर्माण हुआ है। अस्पृश्यता जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव के अस्तित्व पर अपना आधिपत्य जमाये हुए है।

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था

भारतीय जाति व्यवस्था वह सामाजिक संस्थान हैं, जिसने भारतीय मनुष्यों की मानसिकता को दूषित कर दिया है। भारतीय इतिहास और संस्कृति प्राचीनतम है। प्राचीन भारत में हिन्दू समाज कर्माधारित जातियों के विभिन्न समुदायों और वर्गों में विखंडित थे, जिनके अपने रहन-सहन, विचार, भाषा और व्यवहार में विभिन्नताएं विद्यमान थीं। मध्यकाल में जाति जन्म पर आधारित हो गयी और उसमें अस्पृश्यता ने प्रवेश कर लिया। पूर्व वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक मानवीय समाज के आदर्शों, व्यवहारों, नियमों और सामाजिक विचारों में परिवर्तन होते रहे हैं। शूद्र वर्ण को सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

हिन्दू सामाजिक संस्थाओं में बंधन है, स्वतंत्रता नहीं। जातियों और वर्गों के प्रमाण भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी मौजूद हैं। इतिहास में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि संसार के अधिकांश देशों में ऐसे वर्ग थे जिन्हें निम्न वर्ग कहा जाता था और इनको रोम में दास कहा

जाता था। स्पार्टन में इनका नाम हेलोटस या क्रीट था। ब्रिटेन में ये विलियम्स या क्षुद्र कहलाते थे, अमेरिका में नीग्रो और जर्मनी में यहदी थे। लेकिन इन सभी वर्गों में दलितों की स्थिति पशुओं से भी बदतर थी, क्योंकि दलित हिंदू धर्म की धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों के साजिश के शिकार थे। आर.एस.शर्मा के अनुसार उत्तर वैदिक काल में शूद्रों का एक छोटा सा ताबेदार वर्ग था जिसमें घरेलू कामकाज पर लगाये जाने वाले पराजित और साधनहीन आर्य और अनार्य शामिल थे। वेदोत्तर और मौर्योत्तर काल में शूद्र वर्ण के लोग कृषि कार्यों में संलिप्त रहते थे। पतंजलि के भाष्य से प्रकट होता है कि दूसरी सदी ईसा पूर्व में भी कुछ ऐसे समृद्ध शूद्र थे जो किसी आर्य के बर्तन में खाने से भी अशुद्ध नहीं माने जाते थे।

मनुवादियों और ब्राह्मणवादियों पर प्राकृतिक और भौगोलिक दशाओं का प्रभाव दृष्टिगोचर प्रतीत होता है, क्योंकि प्राकृतिक और भौगोलिक दुंदुभी का सहारा लेकर दलितों को गांवों और नगरों की मुख्य धारा से बाहर रहने के लिए विवश किया गया। जिनकी स्थिति हिन्दू समाज में निचले पायदान पर थी। वर्ण व्यवस्था के अनुसार शूद्रों को हिंदू धर्म का हिस्सा नहीं माना गया। जाति का सबसे गहन अध्ययन अम्बेडकर ने किया।

डॉ.अम्बेडकर ने देश की व्यवस्था को सुधारने के लिए विभिन्न प्रयत्न किये। उन्होंने भारतीय समाज की मुख्य समस्या जाति व्यवस्था को पहचाना और उसका निराकरण करने के लिए जाति व्यवस्था का कड़ा विरोध किया। समाजशास्त्री के.एल. शर्मा का कहना है कि जाति विचारों और मूल्यों की एक व्यवस्था है और यह व्यवस्था समाज के सभी पहलुओं को अपने

अन्दर आत्मसात कर लेती है। 19वीं सदी का भारतीय समाज धार्मिक अंधविश्वासों से पीड़ित था। मैक्स वेबर कहना है कि हिन्दू धर्म जादू अंधविश्वास और आध्यात्मवाद की खिचड़ी बनकर रह गया था। भारत में हिंदू धर्म का बोलबाला सदियों से रहा है लेकिन हिंदू धर्म के आधार पर आधारित सामाजिक रीति रिवाजों और मनुवादी व्यवस्था में परिवर्तन होने लगा है। बाबा साहेब भारत को जातिप्रथा की समस्या से मुक्ति दिलाना चाहते थे। उनके अनुसार दलितों के साथ होने वाले शोषण और उत्पीड़न के लिए मनुवादी सोच थी लेकिन इसके साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि दलितों का गुलाम होने का कारण शिक्षा का अभाव भी था। इसीलिए उन्होंने दलितों को शिक्षित बनो का संदेश दिया और यही कारण है कि बाबा साहेब के इस मूल मंत्र का दलितों पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

जाति एक गतिशील व्यवस्था है। जाति व्यवस्था एक दबावकारी व्यवस्था नहीं है अपितु यह बाहुबलियों का संस्थान रही है। हमें इस बात की ओर भी ध्यान देना होगा कि जाति व्यवस्था अच्छी है या बुरी। जाति उन लोगों के लिए आज भी अच्छी है जिनका पांच हजार वर्षों से समाज में स्थान सर्वोपरि रहा है और जो हजारों वर्षों से जाति के प्रकोप के शिकार हुए हैं, उनके लिए बुरी है। सामाजिक समानता जो वर्तमान में भी कोसों दूर दिखाई पड़ती है। संविधान में अस्पृश्यता को अपराध माना गया। भारत में ही नहीं दूसरे देशों में भी सामाजिक असमानता को अस्वीकार कर दिया है लेकिन व्यवसायों के अंतर्गत तो विभिन्नताएं प्रचलन में अंतर्निहित हैं। शिकारी, मछुआरे, आविष्कारक, संगीतज्ञ, चिकित्सक, न्यायविद्, इंजीनियर, शिल्पकार आदि

लोग अपना अपना व्यवसाय अपनाये हुए हैं लेकिन जाति का उनके परिवर्तन में विशेष महत्व रहा है। समाजशास्त्रियों ने जाति, गांव, धर्म और अस्पृश्यता पर काफी काम किया है। बाबा साहेब वर्ण व्यवस्था को समाप्त करना चाहते थे और गांधी अस्पृश्यता का निराकरण चाहते थे। सुरजीत सिन्हा ने जाति को सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यापक व्यवस्था माना है और यह माना जाता है कि विभिन्न विद्वानों ने जाति को हिन्दू समाज के समान ही माना है। भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद ने सुरजीत सिन्हा के जाति संबंधी तर्कों से सहमति जाहिर की है। यह मुद्दे इस प्रकार हैं : ग्रामीण अवलोकन, जाति और राजनीति, वर्ग, सामाजिक और आर्थिक विकास, जाति व्यवस्था में गतिशीलता, जाति की सामाजिक संरचना, भारत और पाकिस्तान में गैर हिन्दुओं में जाति, जाति और भारतीय सभ्यता। सुरजीत सिन्हा ने अपने माडल में जाति व्यवस्था से सम्बंधित विभिन्न प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है:

1. जाति प्रथा की उत्पत्ति के बारे में काल्पनिक सिद्धांतों का वर्णन बन्द हो गया है। असली बात तो यह है कि आज हम उत्पत्ति की चर्चा नहीं करते हैं अपितु भारतीय समाज में जाति के उद्भव के स्तरों की व्याख्या करते हैं।
2. जाति से सम्बंधित अधिकतर कार्य सामाजिक मानवशास्त्र और समाजशास्त्र की पद्धति द्वारा बहु जाति गांवों को अध्ययन का आधार मानकर किया जाता है।
3. इस अध्ययन में परिस्थितियों और परिवर्तनों की शक्तियों के साथ जाति की अनुकूलता का अवलोकन पर विशेष बल दिया गया है।

4. अंतर्जातीय प्रस्थिति के श्रेणीकरण का अध्ययन तथ्यों के विश्लेषण के द्वारा किया जाता है।

5. जाति व्यवस्था में संरचनात्मक अनुलम्बीय, स्थितिक, समस्तरीय, सामाजिक गतिशीलता और परिवर्तनों के अध्ययन भी किये गये हैं।

6. पवित्रता और अपवित्रता की प्रतिकूलता पर आधारित सोपान की अवधारणा पर अत्यधिक बल दिया गया है।

7. भारत में अंतरक्षेत्रीय और भारतीय सभ्यता के परे अन्य व्यवस्थाओं से जाति की तुलनाएं की गई हैं।

अम्बेडकर जाति प्रथा के कट्टर विरोधी थे और समाज में अभिशप्त इस बीमारी को समाप्त करने के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहे। अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था को ब्राह्मणों की सर्वश्रेष्ठ शिल्पकला माना है जिन्होंने समाज को चार वर्णों में विभक्त कर दिया जाति के आधार पर। जाति अपने आप में कुछ भी नहीं है बल्कि जाति व्यवस्था है। उन्होंने कहा कि भारत में अनेक समुदाय हैं, जैसे हिन्दू, मुस्लिम, यहूदी, ईसाई और पारसी लेकिन हिन्दुओं को छोड़कर किसी भी समुदाय में आंतरिक जातिभेद के प्रमाण नहीं मिलते हैं। अवन्तिका प्रसाद मरमट लिखते हैं कि यदि आर्य शूद्र होते तो मनु ने वक्तव्य में क्यों कहा कि शूद्र के सम्मुख वेद न पढ़ें ? यहां यह प्रश्न भी विचारणीय प्रतीत होता है कि शूद्र को वेद पढ़ने, सुनने और उनका उच्चारण करने से क्यों वंचित किया गया ? क्या मनोवैज्ञानिक नीति थी कि शूद्रों को गांव और नगरों की मुख्य बस्तियों से बाहर रहने के लिए विवश किया गया ?

दीपांकर का कहना है कि प्रत्येक जाति धर्म विधान के नियमों और शर्तों के आधार पर अपनी

पृथकता बनाये रखती है और प्रत्येक जाति अपने प्रतीकों को विकसित कर लेती है। ये प्रतीक ही जाति की विशेष पहचान बन जाते हैं। यदि उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो गुजरात और राजस्थान से नागर ब्राह्मण भोजन करते समय पीताम्बर वस्त्र पहनते हैं जो रेशमी वस्त्र है। पीताम्बर वस्त्र पवित्रता का प्रतीक है और यह पवित्रता एक जाति को दूसरी जाति से पृथक कर देती है लेकिन यह अतिप्रतीकवाद है। अगर सामाजिक तौर पर दृष्टि डाली जाए तो अस्पृश्यता का मूल्य उच्च जातियों में भी महत्वपूर्ण है लेकिन दीपांकर गुप्ता का मानना है कि यह मूल्य उद्विकासीय की परम्परा में आया है, इसीलिए अस्पृश्यता, पवित्रता और अपवित्रता भी उद्विकासीय है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में बात करें तो जाति के स्वरूप में भी अन्तर आने लगा है, लेकिन जाति की समाज में आज भी उतनी ही प्रासंगिकता बनी हुई है जितनी पूर्व में थी। वर्तमान में दलित समाज के कुछ लोग राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में उच्च पदों पर बैठे हुए दिखाई पड़ते हैं लेकिन गैर दलित समाज को उनके विकास की यह धारणा उनके विकास और उन्नति को पचा नहीं पा रही है। कहने का अभिप्राय यह है कि देश के अन्दर जाति के स्वरूप में कमी नहीं आई बल्कि जाति के स्वरूप में बढ़ोत्तरी हुई है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जाति वर्तमान में भी देश के सार्वभौमिक विकास में एक विकराल समस्या बनी हुई है जो देश और समाज के विकास में घातक ही सिद्ध हुई है। जाति के स्वरूप में बढ़ोत्तरी अवश्य हुई है क्योंकि देश में दलित



समुदाय और महिलाओं के साथ निरन्तर शोषण और उत्पीडन की घटनाएं घटित हो रही हैं और देश में जाति की समस्याओं से निजात पाने के लिए हिन्दू धर्म को त्यागकर बौद्ध धर्म की शरण में जाना होगा, क्योंकि बौद्ध धर्म समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे का वह प्रतीक है, जो देश को एक सूत्र में बांध सकता है। प्रत्येक मानव अपने अधिकारों का निर्वाह स्वतंत्रतापूर्वक कर सके और देश को उन्नतिशील बनाने में अपना योगदान दे सके।

संदर्भ ग्रन्थ

- 1 कमलकान्त - दलितों के मसीहा कांशीराम का सम्पूर्ण वृत्तान्त, बुराडी, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली, 2007, पृष्ठ -18
- 2 तदैव, पृष्ठ - 48
- 3 मोहनदास नैमिशराय - बहुजन नायक कांशीराम का जीवन संघर्ष, कान्ती पब्लिकेशन, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 47
- 4 तदैव, पृष्ठ - 51
- 5 दैनिक भास्कर, 11 अक्टूबर, 2006
- 6 माया-युग, बहुजन आन्दोलन के महानायक, अक्टूबर 2007, मासिक, पृष्ठ - 20
- 7 तदैव, पृष्ठ - 20
- 8 एच.एल. दुसाध -उत्तर प्रदेश में बसपा की सफलता, सोशल इन्जीनियरिंग का कमाल या कुछ ओर (एक चुनावी अध्ययन), दुसाध प्रकाशन, देवरिया, 2008, पृष्ठ - 48
- 9 तदैव, पृष्ठ - 59
- 10 के.एल. चंचरिक - भारतीय दलित आन्दोलन की रूपरेखा, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 359
- 11 तदैव, पृष्ठ 361
- 12 दलित चेतना के नायक-कांशीराम, दैनिक जागरण, 9 अक्टूबर 2007
- 13 तदैव,
- 14 अजय कुमार - दलित पैंथ्र आन्डोलन, गौतमबुक सेन्टर, दिल्ली, 2006, पृष्ठ - 125

15 तदैव, पृष्ठ - 128

16 एच.एल. दुसाध - डाइवर्सिटी दलित सशक्तिकरण का सर्वोत्तम औजार, दलित लेखक संघ, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 201

17 ए.आर.अकेला - कांशीराम के साक्षात्कार, मानक पब्लिकेशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ - 156

18 तदैव, पृष्ठ- 157